हिम-तरंगिनी

माखनलाल चतुर्वेदी

उच्चकोटि की पुस्तकें मिलने का एकमात्र स्थान

रीगल बुक डिपो

नई सड़क देहली।

ग्रन्थ संख्या-१२३

प्रकाशक तथा विक्रेता—
भारती भंडार,
लीडर प्रेस,
प्रयाग।

प्रथम संस्करण : सं० २००५
मूल्य
साढ़े चार रुपये

मुद्रक—
अमरचन्द्र
राजहंस प्रेस,
दिल्ली।

दो शब्द

मेरे जीवन का कुछ 'कभी कभी,' यह संग्रह वन कर, पाठकों के हाथों में जा रहा है। इसे निर्माल्य जान कर, युग-रुचि के चरणों में कांटों-सा कुछ गड़ न जाय, अतः इसे वरसों रोक रखा। इनमें से एक-दो तुकवन्दियां, बीस वरस पहले जब एक सामयिक मे छप गई थीं, तव एक सज्जन ने मेरी लिखास और युग की धारणा की दूरी को इन शब्दों में मुझे लिखा था—"आदमी बड़े भले हो। नाम भी अच्छा, काम भी अच्छे। परन्तु तुम्हारे काव्य को तो यार तुम्हीं लिखो, तुम्हीं पढ़ो। वुरा न मानना।···अमेरिका से लौट कर, मैंने यह नई बीमारी तुममे देखी।···।" वङ्गाली होकर भी ये भले-मानस हिन्दी खूब पढ़ते हैं। किन्तु इन तिलों मे तेल कहां था ? मैं तो लिखता ही गया।

तव मै लिखता क्यों गया ? मेरे निकट तो 'ये' परम सत्य हैं। आज भी वे क्षण, वे उतार-चढ़ाव, वे आंसू, वे उल्लास, वे जीवित-मरण मेरे निकट खड़े-से हैं। यही क्षण थे, जव मैं युग से हाथ जोड़ कर मन-ही-मन कहता था—कभी-कभी मुझे अपना भी रहने दो।

कविता की धर्मशाला में, जहां कुछ लोग कमरे पा गये थे, कुछ फर्श पर बिस्तर डाले थे, कुछ सम्पूर्ण धर्मशाला पर एकाधिकार किये थे, कुछ सम्पूर्ण धर्मशाला की लांवी दीवार पर अपने ही हाथ की खरिया मिट्टी से लिख रहे थे—"यहॉ सवसे सुरक्षित और श्रेष्ठ स्थान मेरा है।" वहॉ धर्मशाला से घवड़ाने और भीड़ से परेशान होने की भीरु वृत्ति लिये मैं अलग ही खड़ा रहा था, अलग ही खडा रहना चाहता रहा। मराठी कवि गोविन्दाग्रज के विनोदी नाम 'वालकराम' का यह 'नोटिस' वनकर—"इस धर्मशाला के द्वार पर, विस्तरे-पेटी लादे खड़े रहने वाले कवि मित्रो, इसमें जगह नहीं है' जो सूझों की गंगा शिर पर लिये थे, वे लोक-श्रद्धा के देव-मन्दिरों में तो पहुँच गये, किन्तु इस धर्मशाला के द्वार पर उन्हें उपेक्षित, प्रताड़ित और वाय-

भक्ती रहने ही का वरदान मिला। किन्तु इस पथ का पंथी सांसों की रेल-सड़क पर चलते-चलते जैसे वाहन से सवार बन जाता है, वैसे ही मैं भी कवि कहलाने लगा, और तुकबन्दियां छपने लगीं।

समय की लांबी यात्रा में, जीवन के अर्थ और भावों के आरोप इतने वदले कि इन पंक्तियों को छपने भेजते समय, मेरे पास कहने को कुछ नहीं रह गया। ये जीवन की पराजय है, जो सांस की तरह अपनी होती है; उस पर हिस्सा-वांटा कम ही लोगों का हो पाता है। एकान्त के ये क्षण जीवन की तरह दुलराते हुए, पुरुषार्थ को सदा कंपकंपी आई। सन्त विनोबा ने एक वार कहा कि प्रार्थना पुरुषार्थ को उद्दण्ड होने से रोकती है, और श्रद्धा को कायर होने से। पता नहीं, ये तुकवन्दियां किसे क्या होने से रोकेंगी ?

हसन की गाड़ी
हुसैन के बैल
और बन्दे की ललकार

इस तरह 'अव्यापारेषु व्यापार' के तीन साझीदारों की तरह, यह संग्रह छापे तक पहुंच ही तव पाया, जब मित्रों ने रद्दी कागजों में से रचनाये खोजने से लगाकर 'प्रूफ' देखने तक की क्रियाओं में साथ दिया। इस तरह बिना जुड़े द्रव्यों को जोड़-जोड़कर मेरे इस 'वेजोड़' 'यश' का निर्माण हुआ !

एक सज्जन 'ग्रामसिंह' से वेतरह नाराज थे। सेवा का व्रती वह प्राणी उन्हें जैसे दुश्मन देखे। एक दिन, एक मेले में से उनके वच्चे, उसी जानवर की सूरत का एक खिलौना ले आये। आखिर उन सज्जन पुरुष ने उसकी दुम इस आशा से घिस-घिसकर छोटी कर दी कि वह कुत्ता विल्ली दीखने लगे। किन्तु परिणाम तृतीय पुरुषत्व को प्राप्त हो गया ! वह कुत्ता रहा नहीं और विल्ली दीख सका नहीं। 'पूजा-गीत' कहे जाने की 'उम्मीदवार' इन तुकवन्दियों की भी यही दुर्गति हुई। ये गीत पूजा रहे नहीं, प्रेम वने नहीं, अत. यह निर्माल्य' शिखर की ऊँचाई से भागते हुए, 'निम्नगा' हो गये, और 'हिम-तरगिनी' नाम पा गये। प्रलय की आग होती तो ऊपर को सुलग कर भड़कती, 'पानी' थे कि ढालू जमीन ढूँढ़ते चल पड़े नीचे स्तर की ओर।

इनकी भूमिका थी 'चुप रहना' सो सुहृद वाचस्पति पाठक के

आग्रह से वह सधी नहीं, अतः ये दो शब्द !

कागज और स्याही से डर कर काम लेने वाला सुस्त मैं, महीनों में आज ये पंक्तियां लिख पाया। मुझे नोटिस तो मिल गया था कि यदि तुम भूमिका लिख कर नहीं भेजते हो, तो पुस्तक बिना भूमिका छप जायगी। और यह पंक्तियाँ भूमिका हैं भी नहीं। किन्तु गाड़ी के लेट होने की आशा का मारा यात्री, कभी-कभी स्टेशन तक दौड़ लगा कर देख लेता है। सो मैं भी इन पंक्तियों को लिखकर भिजवा रहा हूँ। छप गईं तो गनीमत, नहीं तो फिर कभी।

कृष्णाष्टमी सं० २००४ — माखनलाल चतुर्वेदी
खंडवा, म० प्रा०

क्रम

: १ :

जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

तो मधुर मधुमास का वरदान क्या है ?
तो अमर अस्तित्व का, अभिमान क्या है ?
तो प्रणय में प्रार्थना का मोह क्यों है ?
तो प्रलय में पतन से विद्रोह क्यों है ?

आय, या जाये कहीं–
असहाय दर्शन की घड़ी;
जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल घड़ी।

सूझ ने ब्रह्माण्ड में फेरी लगाई,
और यादों ने सजग घेरी लगाई,
अर्चना कर सोलहों साधें सधीं हों,
सोलहों शृंगार ने सौंहे बदीं हों,

मगन होकर, गगन पर,
बिखरी व्यथा बन फुलझड़ी;
जब न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

याद ही करता रहा यह लाल टीका,
बन चला जंजाल यह इतिहास जी का,
पुष्प पुतली पर प्रणयिनी चुन न पाई,
साँस और उसाँस के पट बुन न पाई,

पलक की चिक, बिना प्रभु-
पाये, सिमट कर गिर पड़ी;
जब न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

आगया आलोक अंचल से निखर कर,
गिर पड़ा लावण्य आँखों से उतर कर,
रूप ने आराधना से हार पाई,
और गुण ने गगन पर सूली सजाई,

स्वप्न का उपवन सुखा-
डाला, कि जब आई झड़ी;
मैं न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

तुम नहीं आये? न आओ, याद दे दो,
फैसला छोड़ा, फकत फ़रियाद दे दो,
मति नहीं कहती चरण का स्वाद दे दो,
बस प्रहारों का अनंत प्रसाद दे दो,

देख ले जग, सिसक कर,
आराधना सूली चढ़ी;
जो न बन पाई तुम्हारे
गीत की कोमल कड़ी।

और जब सावन लुभावन बरस आया,
उन्हें निज उच्चत्व पर जब तरस आया,
भूमि का शत-शत कलेजा ऊग आया,
निर्झरों ने विवश मेघ-मलार गाया,

बोल उट्ठे "लो चलो,
"विष-पान की आई घड़ी;
"उठो, बन जाओ हमारे
"गीत की कोमल कड़ी।"

सत्यनारायण कुटीर
१९४२

: २ :

तुम मन्द चलो,
ध्वनि के खतरा बिखरे मग में—
तुम मन्द चलो।

सूझों का पहिन कलेवर सा,
विकलाई का कल जेवर सा,
घुल-घुल आँखों के पानी में—
फिर छलक-छलक बन छन्द चलो।
पर मन्द चलो।

प्रहरी पलकें? चुप, सोने दो!
धड़कन रोती है? रोने दो!
पुतली के अँधियारे जग में—
साजन के मग स्वच्छन्द चलो।
पर मन्द चलो।

ये फूल, कि ये काँटे आली,
आये तेरे बाँटे आली!
आलिंगन में ये सूली हैं—
इनमें मत कर फर-फन्द चलो।
तुम मन्द चलो।

ओंठों से ओंठों की रूठन,
बिखरे प्रसाद, छूटे जूठन,
यह दण्ड-दान, यह रक्त-स्नान,
करती चुपचाप पसंद चलो।
पर मन्द चलो।

ऊषा, यह तारों की समाधि,
यह बिछुड़न की जगमगी व्याधि,
तुम भी चाहों को दफनाती,
छवि ढोती, मत्त गयन्द चलो।
पर मन्द चलो।

सारा हरियाला, दूबों का,
ओसों के आँसू ढाल उठा,
लो साथी पाये—भागो ना,
बन कर सखि, मत्त मरंद चलो।
तुम मन्द चलो।

ये कड़ियाँ हैं, ये घड़ियाँ हैं
पल हैं, प्रहार की लड़ियाँ हैं
नीरव निश्वासों पर लिखतीं—
अपने सिसकन, निस्पन्द चलो।
तुम मन्द चलो।

१९३२

: ३ :

खोने को पाने आये हो ?
रूठा यौवन-पथिक, दूर तक
उसे मनाने आये हो ?
खोने को पाने आये हो ?

आशा ने जब अंगड़ाई ली,
विश्वास निगोड़ा जाग उठा,
मानो पा, प्रात, पपीहे का-
जोड़ा प्रिय बन्धन त्याग उठा,

मानो यमुना के दोनों तट
ले लेकर लहरों की बाहे-
मिलने मे असफल कल-कल मे-
रोये ले मधुर मलय आहे,

क्या मिलन-मुग्ध को, बिछुड़न की,
वाणी समझाने आये हो ?
खोने को पाने आये हो ?

जब वीणा की खूँटी खींची,
बेबस कराह झंकार उठी,
मानो कल्याणी वाणी, उठ-
गिर पड़ने को लाचार उठी,

तारों मे तारे डाल-डाल
मनमानी जब मिजराब हुई,
बन्धन की सूली के झूलो-
की जब थिरकन बेताब हुई,

तुम उसको, गोदी में लेकर,
जी भर बहलाने आये हो ?
खोने को पाने आये हो ?

जब मरे हुये अरमानों की
तुमने यों चिता सजाई है,
उस पर सनेह को सींचा है,
आहों की आग लगाई है,

फिर भस्म हुई आकांक्षाओं-
की, माला क्यों पहिनाते हो ?
तुम इस बीते विहाग में
सोरठ की मस्ती क्यों लाते हो ?

क्या जीवन को ठुकरा-
मिट्टी का मूल्य बढ़ाने आये हो ?
खोने को पाने आये हो ?

वह चरण-चरण, सन्तरण राग
मन-भावन के मनहरण गीत-
बन, भावी के आँचल से जिसदिन
झाँक - झाँक उठा अतीत,

तब युग के कपड़े बदल - बदल
कहता था माधव का निदेश,
इस ओर चलो, इस ओर बढ़ो !
यह है मोहन का मलय-देश,

सूली के पथ, साजन के रथ-
की राह दिखाने आये हो ?
खोने को पाने आये हो ?

सत्यनारायण कुटीर
१६४९

: ४ :

जागना अपराध !

इस विजन बन-गोद मे सखि,
मुक्ति - बन्धन - मोद में सखि,
विष - प्रहार - प्रमोद मे सखि,
मृदुल भावों
स्नेह दावों
अश्रु के अगणित अभावों का शिकारी-
आगया विधि व्याध,
जागना अपराध !
बंक वाली, भौंह काली,
मौत, यह अमरत्व ढाली,
करुण धन सी
तरल घन सी
सिसकियों के सघन वन सी,
श्याम - सी,
ताजे, कटे से,
खेत सी असहाय,
कौन पूछे ?
पुरुष या पशु
आय चाहे जाय,
खोलती सी शाप,
कसकर बाँधती वरदान-

पाप में—
कुछ आप खोती
आप में—
कुछ मान ।
ध्यान में, धुन में,
हिये में, घाव में,
शर में,
आँख मूँदे,
ले रही विष को,—
अमृत के भाव !
अचल पलक,
अचंचला पुतली
युगों के बीच,
दबी-सी,
उन तरल बूँदों से
कलेजा सींच,
खूब अपने से
लपेट - लपेट
परम अभाव,
चाव से बोली,
प्रलय की साध-
जागना अपराध !

त्रिपुरी कैम्प
जनवरी १९३९

: ५ :

यह किसका मन डोला ?

मृदुल पुतलियों के उछाल पर,
पलकों के हिलते तमाल पर,
निःश्वासों के ज्वाल-जाल पर,
कौन लिख रहा व्यथा कथा ?

किसका धीरज 'हाँ' बोला ?
किस पर बरस पड़ीं यह घड़ियाँ
यह किसका मन डोला ?

करुणा के उलझे तारों से,
विवश बिखरती मनुहारों से,
आशा के टूटे द्वारों से—
झाँक-झाँक कर, तरल शाप में-

किसने यों वर घोला
कैसे काले दाग़ पड़ गये !
यह किसका मन डोला ?

फूटे क्यों अभाव के छाले,
पड़ने लगे ललक के लाले,
यह कैसे सुहाग पर ताले !
अरी मधुरिमा पनघट पर यह—

घट का बंधन खोला ?
गुन की फाँसी टूटी लखकर
यह किसका मन डोला ?

अन्धकार के श्याम तार पर,
पुतली का वैभव निखार कर,
वेणी की गाँठें सँवार कर,
चाँद और तम में प्रिय कैसा—

यह रिश्ता मुँह बोला?
वेणु और वेणी में झगड़ा
यह किसका मन डोला?

बेचारा गुलाब था चटका
उससे भूमि—कम्प का झटका
लेखा, और सजनि घट-घट का!
यह धीरज, सतपुड़ा शिखर—

सा स्थिर, हो गया हिंडोला,
फूलों के रेशे की फाँसी
यह किसका मन डोला?

एक आँख में सावन छाया,
दूजी में भादों भर आया
घड़ी झड़ी थी, झड़ी घड़ी थी
गरजन, बरसन, पंकिल, मलजल,

छुपा 'सुवर्ण खटोला'
रो रो खोया चाँद डायरी?
यह किसका मन डोला?

मैं बरसी तो बाढ़ मुझी में?
दीखे आँखों, दूखे जी में
यह दूरी करनी, कथनी में
दैव, स्नेह के अन्तराल से

गरल गले चढ़ बोला
मैं साँसों के पद सुहलाली
यह किसका मन डोला?

त्रिपुरी कैम्प
१६३८ नवम्बर

: ६ :

चलो छिया-छी हो अन्तर में !

तुम चन्दा
मैं रात सुहागन
चमक चमक उट्ठें आँगन में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

बिखर बिखर उट्ठो, मेरे घन,
भर काले अन्तस पर कन-कन,
श्याम-गौर का अर्थ समझलें
जगत पुतलियाँ शून्य प्रहर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

किरनों के भुज, ओ अनगिन कर
मेलो, मेरे काले जी पर
उमग-उमग उट्ठें रहस्य,
गोरी बाहों का श्याम सुँदर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

मत देखो, चमकीली किरनो
जग को, ओ चाँदी के साजन !
कहीं चाँदनी मत मिल जावे
जग-यौवन की लहर लहर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

चाहों सी, आहों सी, मनु-
हारों सी, मैं हूँ श्यामल श्यामल
बिना हाथ आये छुप जाते

हो, क्यों ? प्रिय किसके मंदिर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

कोटि कोटि दृग ! मैं जगमग जो-
हूँ काले स्वर, काले क्षण गिन,
ओ उज्वल श्रम कुछ छू दो
पटरानी को तुम अमर उभर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

चमकीले किरनीले शस्त्रों
काट रहे तम श्यामल तिलतिल
ऊषा का मरघट साजोगे ?
यही लिख सके चार पहर में ?
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

ये अंगारे, कहते आये
ये जी के टुकड़े, ये तारे
'आज मिलोगे', 'आज मिलोगे',
पर हम मिलें न दुनिया भर में
चलो छिया-छी हो अन्तर में !

१९३४

: ७ :

गो-गण सँभाले नहीं जाते मतवाले नाथ,
दुपहर आई बर-छाँह में बिठाओ नेक।
वासना-विहंग वृज-वासियों के खेत चुगें,
तालियाँ बजाओ आओ मिलके उड़ाओ नेक।
दम्भ-दानवों ने कर-कर कूट टोने यह,
गोकुल उजाड़ा है गुपाल जू बसाओ नेक।
मन कालीमर्दन हो, मुदित गुवर्धन हो,
दर्द भरे उर-मधुपुर मे समाओ नेक।

१६१७
गंभार नदी के किनारे

: ८ :

सूझ, का साथी—
मोम - दीप मेरा !
कितना बेबस है यह
जीवन का रस है यह
छनछन, पलपल, बलबल
छू रहा सवेरा,
अपना अस्तित्व भूल
सूरज को टेरा—
मोम - दीप मेरा !
कितना बेबस दीखा
इसने मिटना सीखा
रक्त-रक्त, बिन्दु-बिन्दु
झर रहा प्रकाश सिन्धु
कोटि-कोटि बना व्याप्त
छोटा सा घेरा !
मोम - दीप मेरा !
ली से लग, जेब बैठ
तम-बल पर जमा पैठ
जब चाहूँ जाग उठे
जब चाहूँ सो जावे,
पीड़ा में साथ रहे
लीला में खो जावे !
मोम - दीप मेरा !

नभ की तम गोद भरे-
नखत कोटि; पर न भरे
पढ़ न सका, उनके बल
जीवन के अक्षर ये,
आ न सके उतर-उतर
भूल न मेरे घर ये!
इन पर गर्वित न हुआ
प्रणय गर्व मेरा
मेरे बस साथ मधुर—
मोम - दीप मेरा!

जब चाहूँ मिल जावे
जब चाहूँ मिट जावे
तम से जब तुमुल युद्ध-
ठने, दौड़ जुट जावे
सूर्यों के रथ - पथ का
ज्वलित लघु चितेरा!
मोम - दीप मेरा!

यह गरीब, यह लघु-लघु
प्राणों पर यह उदार
बिन्दु - बिन्दु
आग - आग
प्राण - प्राण
यज्ञ - ज्वार
पीढ़ियाँ प्रकाश-पथिक
जग - रथ-गति-चेरा!
मोम - दीप मेरा!

१९४१

: ६ :

सुनकर तुम्हारी चीख हूँ
रण मच गया यह घोर,
वे विमल छोटे से युगल,
ये भीम काय कठोर;

मैं घोर रव में खिंच पड़ा
कितना भयंकर जोर?
वे खींचते हैं, हाय!
ये जकड़े महान् कठोर।

हे देव! तेरे दाँव ही
निर्णय करेंगे आप;
उस ओर तेरे पाँव हैं
इस ओर मेरे पाप।

१६१७
गंजाब नदी के किनारे

: १० :

वे तुम्हारे बोल !
वह तुम्हारा प्यार, चुम्बन,
वह तुम्हारा स्नेह - सिहरन
वे तुम्हारे बोल !
वे अनमोल मोती
वे रजत - क्षण !
वह तुम्हारे आँसुओं के बिन्दु
वे लोने सरोवर
बिन्दुओं में प्रेम के भगवान् का
संगीत भर - भर !
बोलते थे तुम,
अमर रस घोलते थे
तुम हठीले,
पर हृदय-पट तार
हो पाये कभी मेरे न गीले !
ना, अजी मैंने
सुने तक भी-
नहीं, प्यारे-
तुम्हारे बोल,
बोल से बढ़कर, बजा, मेरे हृदय में
सुख क्षणों का ढोल !
वे तुम्हारे बोल !

किन्तु—

आज जब,
तुव युगुल-भुज के
हार का
मेरे हिये में-
है नहीं उपहार,
आज भावों से भरा वह-
मौन है, तव मधुर स्वर सुकुमार!

आज मैंने
बीन खोई
बीन-वादक का
अमर स्वर-भार
आज मैं तो
खो चुका
साँसें-उसाँसें,
और अपना लाड़ला
उर-ज्वार!

आज जब तुम
हो नहीं, इस-
फूस कुटिया में
कि कसक समेत;
'चेत' को चेतावनी देने
पधारे हिय-स्वभाव अचेत।

और यह क्या,
वे तुम्हारे बोल!
जिनको वध किया था
पा तुम्हें "सुख साथ!"
कल्पना के रथ चढ़े आये
उठाये तर्जना का हाथ।

आज तुम होते कि
यह वर माँगता हूँ
इस उजड़ती हाट मे
घर माँगता हूँ !
लौटकर समझा रहे
जी भा रहे तव बोल,

बोल पर, जी दूखता है
रहे शत शिर डोल,
जब न तुम हो तब
तुम्हारे बोल लौटे प्राण
और समझाने लगे तुम
प्राण हो तुम प्राण !

प्राण बोलो वे तुम्हारे बोल !
कल्पना पर चढ़
उतर जी पर
कसक में घोल,
एक बिरिया,
एक बिरिया
फिर कहो वे बोल !

१६२६
श्राद्ध तिथि

: ११ :

धमनी से मिस धड़कन की
मृदुमाला फेर रहे ? बोलो !
दांव लगाते हो ? घिर-घिर कर
किसको घेर रहे ? बोलो !
माधव की रट है ? या प्रीतम-
प्रीतम टेर रहे ? बोलो !
या आसेतु - हिमाचल बलि-
का बीज बखेर रहे ? बोलो !
या दाने - दाने छाने जाते
गुनाह गिन जाने को,
या मनका मनका फिरता
जीवन का अलाव जगाने को।

१९२६
वृन्दावन-सम्मेलन

: १२ :

भाई, छोड़ो नहीं, मुझे
खुलकर रोने दो
यह पत्थर का हृदय
आँसुओं से धोने दो,
रहो प्रेम से तुम्हीं
मौज से मंजु महल में,
मुझे दुखों की इसी
झोंपड़ी मे सोने दो।

कुछ भी मेरा हृदय
न तुमसे कह पायेगा,
किन्तु फटेगा;—फटे-
बिना क्यों रह पायेगा;
सिसक-सिसक सानंद
आज होगी श्री-पूजा,
बहे कुटिल यह सुख
दुःख क्यों बह पायेगा।

वारूँ सौ-सौ श्वाँस
एक प्यारी उसाँस पर,
हारूँ, अपने प्राण, दैव
तेरे विलास पर,

चलो, सखे तुम चलो
तुम्हारा कार्य चलाओ
लगे दुखों की झड़ी
आज अपने निराश पर !

हरि खोया है ? नहीं,
हृदय का धन खोया है,
और, न जाने वहीं
दुरात्मा मन खोया है
किन्तु आजतक नहीं
हाय इस तन को खोया,
अरे बचा क्या शेष,
पूर्ण जीवन खोया है।

पूजा के ये पुष्प-
गिरे जाते हैं नीचे,
यह आँसू का स्रोत
आज किसके पद सींचे,
दिखलाती, क्षण मात्र
न आती, प्यारी प्रतिमा
यह दुखिया किस भाँति
उसे भूतल पर खींचे।

दिसंबर १९१४,
पत्नी के स्वर्गवास दिवस पर

: १३ :

उड़ने दे घनश्याम गगन में।

बिन हरियाली के माली पर
बिना राग फैली लाली पर
बिना वृक्ष ऊगी डाली पर
फूली नहीं समाती तन मे
उड़ने दे घनश्याम गगन में !
स्मृति-पंखें फैला-फैला कर
सुख-दुख के झोंके खा-खाकर
ले अवसर उड़ान अकुलाकर
हुई मस्त दिलदार लगन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में !
चमक रहीं कलियाँ चुन लूँगी
कलानाथ अपना कर लूँगी
एक बार 'पी कहाँ' कहूँगी
देखूँगी अपने नैनन में
उड़ने दे घनश्याम गगन में !
नाचूँ जरा सनेह नदी में
मिलूँ महासागर के जी में
पागलनी के पागलपन ले—
तुझे गूँथ दूँ कृष्णार्पण में
उड़ने दे घनश्याम गगन में !

१९१४
'माचना'-तट की पौर्णिमा

: १४ :

जिस ओर देखूँ बस
अड़ी हो तेरी सूरत सामने,
जिस ओर जाऊँ रोक लेवे
तेरी मूरत सामने।

छुपने लगूँ तुझसे मुझे
तुझ बिन ठिकाना है नहीं,
मुझसे छुपे तू जिस जगह
बस मैं पकड़ पाऊँ वहीं।

मैं कहीं होऊँ न होऊँ
तू मुझे लाखों में हो,
मैं मिटूँ जिस रोज मनहर
तू मेरी आँखों में हो।

१६५६

: १५ :

जब तुमने यह धर्म पठाया
मुँह फेरा, मुझसे बिन बोले,
मैंने चुप कर दिया प्रेम को
और कहा मन ही मन रो ले
कौन तुम्हारी बातें खोले !

ले तेरा मजहब यह दौड़ा
मौन प्रेम से कलह मचाने,
और प्रेम ने प्रलय-रागिनी–
भर दी अग-जग मे अनबोले
कौन तुम्हारी बाते खोले।

मैंने बात तुम्हारी मानी
ठुकरा दिया प्रेम को जीकर,
मर-मर कर मैं चढ़ा शिखर पर
प्रेम चढ़ा सूली पर डोले,
कौन तुम्हारी बाते खोले।

मैंने सोचा अपने मजहब—
मे तुम एक बार आओगे,
तुम आये, छुप गए प्रेम में
मेरे गिरे आँख से ओले।
कौन तुम्हारी बातें खोले !

बाहों में ले, दौड़-धूप कर
मैंने मजहब को दुलराया,
पर तुम मुझको धोखा देकर
अरे, प्रेम के जी से बोले,
कौन तुम्हारी बाते खोले!

मैं बस लौट पड़ा मजहब के
पर्वत से, सागर को धाया,
मानो गंगा का यह सोता
पतनोन्मुखी पतन-पथ डोले
कौन तुम्हारी बातें खोले!

सिंधु उठाया जी भर आया
थोड़ा-पा दिल खाली देखा,
पलकें बोल उठीं अनजाने
कौन नेह पर मजहब तोले
कौन तुम्हारी बाते खोले!

आँखों के परदों पर देखा
प्रेमराज, अंजलि भर दौड़े
रे घटवासी, मैंने वे घट
तेरे ही चरणों पर ढोले;
कौन तुम्हारी बातें खोले!

आह! प्रेम का खारा पानी-
उसका धन, मेरी नादानी-
किस पर फेंकूँ अत्याचारी-
साजन! तू पग थलियाँ धोले।
कौन तुम्हारी बातें खोले!

१६२१

: १६ :

बोल तो किसके लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

प्राणों की मसोस, गीतों की-
कड़ियाँ बन-बन रह जाती है,
आँखों की बूँदें बूँदों पर,
चढ़-चढ़ उमड़-घुमड़ आती है।

रे निठुर किस के लिए
मैं आँसुओं में प्यार खोलूँ ?
बोल तो किसके लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

मत उकसा, मेरे मन मोहन कि मैं
जगत - हित कुछ लिख डालूँ,
तू है मेरा जगत, कि जग में
और कौन - सा जग मैं पा लूँ !

तू न आए तो भला कब-
तक कलेजा मैं टटोलूँ ?
बोल तो किसके लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

तुमसे बोल बोलते, बोली-
बनी हमारी कविता रानी,
तुम से रूठ, तान बन बैठी
मेरी यह सिसके दीवानी।

अरे जी के ज्वार, जी से काढ़
फिर किस तौल तोलूँ
बोल तो किस के लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

तुझे पुकारूँ तो हरियातीं—
ये आहें, बेलों - तरुओं पर,
तेरी याद गूँज उठती है
नभ-मंडल में विहगों के स्वर,

नयन के साजन, नयन में-
प्राण ले किस तरह डोलूँ !
बोल तो किस के लिए मैं
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

भर - भर आतीं तेरी यादें
प्रकृति में, बन राम कहानी,
स्वयं भूल जाता हूँ, यह है
तेरी याद कि मेरी बानी !

स्मरण की जंजीर तेरी
लटकती बन कसक मेरी
बाँधने जाकर बना बंदी
कि किस विधि बंद खोलूँ !

बोल तो किस के लिए ये
गीत लिक्खूँ, बोल बोलूँ ?

१९३१

: १७ :

बोल राजा, बोल मेरे।
दूर उस आकाश के-
उस पार, तेरी कल्पनाएँ-
बन निराशाएँ हमारी,
भले चंचल घूम आएँ,
किन्तु, मैं न कहूँ कि साथी,
साथ छन भर डोल मेरे।
बोल राजा, बोल मेरे!

विश्व के उपहार, ये-
निर्माल्य? मैं कैसे रिझाऊँ?
कौन-सा इनमें कहूँ 'मेरा'?
कि मैं कैसे चढ़ाऊँ?
चढ़ विचारों में, उतर जी मे,
कलंक टटोल मेरे।
बोल राजा, बोल मेरे!

ज्वार जी मे आ गया
सागर सरिस खारा न निकले;
तुम्हे कैसे न्यौत दूँ
जो प्यार-सा प्यारा न निकले;
पर इसे मीठा बना
सपने मधुरतर घोले तेरे।
बोल राजा, बोल मेरे।

श्यामता आई, लहर आई,
सलोना स्वाद आया,
पर न जी के सिन्धु में
तू बन अभी उन्माद आया,
आज स्मृति बिकने खड़ी है–
झिड़कियों के मोल तेरे।
बोल राजा, बोल मेरे।

१९३४

: १८ :

बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे
जी से दूर मान बैठी थी
जी से कैसे दूर ? बता तो ?
ऐ मेरे बनवासी राजा !
दूरी बनी क़ुसूर ? बता तो ?
उठ कि भू पर चाँद टूटे
बोल राजा स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे !

उस दिन, जिस दिन तुम हँस-
उट्ठे, मैंने पुनर्जन्म को पाया,
फिर मेरे जी में तुम जनमे
मैं फिर नीला-सा हो आया,
अब वियोगिन साँझ टूटे,
बोल राजा, स्वर अटूटे,
मौन का अब बाँध टूटे !

जीवन के इस बागीचे में
सुमन खिले, फल भी तो भूले,
पर मैंने सब फेंक दिये
वे फले - फूले, वे फले - फूले !
प्राण तू मुझसे न छूटे,
बोल राजा, स्वर अटूटे,
मौन का अब बाँध टूटे !

मेरे मानस में संकट के-
कंज शीश ऊँचा कर आये,
तुतलाने का वचन दिये
मेरी गोदी में तुम भर आये,
बोल अपने कर न झूठे,
बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे।

जी की माला पर लिख दूँ मैं
कैसे तेरा देस निकाला ?
मेरी हर धक - धक खिल उट्ठी-
फिर क्यों चुनूँ फूल की माला ?
सुमन के छाले न फूटे,
बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे !

जब कि मौन से भी ध्वनि झरती
तब ध्वनि की ध्वनि रोक न राजा
चल कि प्रलय भाँवरिया खेलें।
प्राणों के आँगन में आ जा;
आज मैं बन लूँ बधूटी
'बाँध-गाँठ', कि गाँठ छूटी !
काढ़ जी पर बेल - बूटे
बोल राजा, स्वर अटूटे
मौन का अब बाँध टूटे !

१६३६

: १६ :

उस प्रभात, तू बात न माने,
तोड़ कुंद कलियाँ ले आई,
फिर उनकी पंखड़ियाँ तोड़ीं
पर न वहाँ तेरी छवि पाई,
कलियों का यम मुझ में धाया
तब साजन क्यों दौड़ न आया ?

फिर पंखड़ियाँ ऊग उठीं वे
फूल उठी, मेरे वनमाली !
कैसे, कितने हार बनाती
फूल उठी जब डाली - डाली !
सूत्र, सहारा, ढूँढ़ न पाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?

दो - दो हाथ तुम्हारे मेरे
प्रथम 'हार' के हार बनाकर,
मेरी 'हारों' की वन माला
फूल उठी तुझको पहिनाकर,
पर तू था सपनों पर छाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?

दौड़ी मैं, तू भाग न जाये,
डालूँ गलबहियों की माला
फूल उठी साँसों की धुन पर
मेरी 'हार', कि तेरी 'माला' !

तू छुप गया, किसी ने गाया—
रे साजन, क्यों दौड़ न आया ?

जी की माल, सुगंध नेह की
सूख गई, उड़ गई, कि तब तू
दूलह बना; दौड़ कर बोला
पहिना दो सूखी वनमाला।

मैं तो होश समेट न पाई
तेरी स्मृति में प्राण छुपाया,
युग बोला, तू अमर तरुण है
मति ने स्मृति आँचल सरकाया,

जी में खोजा, तुझे न पाया
तू साजन, क्यों दौड़ न आया ?

१६३४

: २० :

ऊषा के सँग, पहिन अरुणिमा
मेरी सुरत बावली बोली—
उतर न सके प्राण सपनों से,
मुझे एक सपने मे ले ले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

तेरे एक-एक सपने पर
सौ-सौ जग न्यौछावर राजा।
छोड़ा तेरा जगत-बखेड़ा
चल उठ, अब सपनों मे खेले ?
मेरा कौन कसाला झेले ?

देख, देख, उस ओर 'मित्र' की
इस बाजू पंकज की दूरी,
और देख उसकी किरनों मे
यह हँस-हँस जय माला मेले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

पंकज का हँसना,
मेरा रो देना,
क्या अपराध हुआ यह ?
कि मैं जन्म तुझमे ले आया
उपजा नहीं कीच के ढेले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

तो भी मैं ऊषा के स्वर में
फूल - फूल मुख - पंकज धोकर—
जी, हँस उठी आँसुओं में से
छुपी वेदना में रस घोले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

कितनी दूर ?
कि इतनी दूरी !
ऊगे भले प्रभाकर मेरे,
क्यों ऊगे ? जी पहुँच न पाता
यह अभाग अब किससे खेले ?
मेरा कौन कसाला झेले ?

प्रातः आँसू ढुलकाकर भी
खिली पखुड़ियाँ, पंकज किलके,
मैं भाँवरिया खेल न जानी
अपने साजन से हिल - मिल के।
मेरा कौन कसाला झेले ?

दर्पण देखा, यह क्या दीखा ?
मेरा चित्र, कि तेरी छाया ?
मुसकाहट पर चढ़ कर बैरी
रहा बिखेर चमक के ढेले,
मेरा कौन कसाला झेले ?

यह प्रहार ? चोखा गठ-बंधन !
चुंबन में यह मीठा दंशन।
'पिये इरादे, खाये संकट'
इतना क्या कम है अपनापन ?
बहुत हुआ, ये चिड़ियाँ चहकीं,
ले सपने फूलों में ले ले।
मेरा कौन कसाला झेले ?

१६३५

: २१ :

मन धक-धक की माला गूँथे,
गूँथे हाथ फूल की माला,
जी का रुधिर रंग है इसका
इसे न कहो, फूल की माला।

पंकज की क्या ताब कि तुम पर—
मेरे जी से बढ़ कर फूले,
मैं सूली पर झूल उठूँ
तब, वह 'बेबस' पानी पर झूले!

तुम रीझो तो रीझो साजन,
लख कर पंकज का खिल जाना
युग-धन! सीखे कौन, नेह मे—
डूब चुके तब ऊपर आना।

पत्थर जी को, पानी कर-कर
सींचा सखे, चरण-नंदन मे
यह क्या? पद--रज ऊग उठी
मुझको भटकाया वीहड़ बन मे

नभ बन कर जब मैंने ताना
अंधकार का ताना-बाना,
तुम बन आये चँदा बाबू
रहा तुम्हे अब कौन ठिकाना?

नजर बन्द तू लिये चाँदनी
घूम गगन में, बिना सहारा,
मेरे स्वर की रानी झाँके
बन कर छोटा-सा ध्रुव तारा !

मैं बन आया रोते-रोते
जब काला-सा खारा सागर,
तब तुम घन-श्याम आ बरसे
जी पर काले बादल बन कर,

हारा कौन ? कि बरस-बरस कर
तुमने मेरी शक्ति बढ़ाई,
तेरी यह प्रहार-माला मेरे
जी में मोती बन आई !

मैं क्या करता उनको लेकर
तेरी कृपा तुझे पहिना दी,
उमड़-घुमड़ कर फिर लहरों—
से, मैंने प्रलय-रागिनी गा दी !

जब तुम आकर नभ पर छाये
'कलानाथ' बन चँदा बाबू,
मैं सागर, पद छूने दौड़ा
ज्वार लिये होकर बेक़ाबू !

आ जाओ अब जी में पाहुन,
जग न जान पाये 'अनजानी'
कैदी ! क्या लोगे ? बोलो तो
काला गगन ? कि काला पानी ?

जब बादल में छुप कर, उसके
गर्जन में तुम बोले बोली
तब ज्वारों की भैरव-ध्वनि को
मैंने अपनी थैली खोली !

मेरी काली गहराई को
विद्युत चमका कर शरमाया
क्षणिक सजीले, इसीलिए मैं
अपने हीरे-मोती लाया!

आज प्राण के शेष नाग पर
माधव होकर पौढ़ो राजा!
मेरे चन्द खिलौना जी के
श्यामल सिंहासन पर आ जा!

१९३३

: २२ :

चल पड़ी चुपचाप सन-सन-सन हुआ,
डालियों को यों चिताने-सी लगी,
आँख की कलियाँ, अरी, खोलो जरा,
हिल स्वपतियों को जगाने-सी लगी

पत्तियों की चुकटियाँ
झट दीं बजा,
डालियाँ कुछ-
ढुलमुलाने-सी लगीं,

किस परम आनन्द-
निधि के चरण पर,
विश्व - साँसे गीत
गाने - सी लगीं।

जग उठा तरु - वृन्द - जग, सुन घोषणा,
पंछियों में चहचहाहट मच गई;
वायु का झोंका जहाँ आया वहाँ-
विश्व में क्यों सनसनाहट मच गई?

१६२२

: २३ :

नाद की प्यालियों, मोद की ले सुरा
गीत के तार - तारों उठी छागई
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी
बोल बोली सलोने कि मैं आगई।

नेह के नाथ क्या नृत्य के रंग में
भावना की रवानी लुटाने चले?
साँस के पास आ, हास के देस छा,
याद को भूलने में भुलाने चले।

प्रेम की जन्म-गाँठों जगी मंगला-
राग वीणा प्रवीणा सखी भारती,
आज ब्रह्माण्ड की गोपिका गा उठी
सूर्य की रश्मियों श्याम की आरती!

जो उँड़ेली कृपा झोलियाँ, प्यार के-
देश ने, आँसुओं में बहीं, आगई;
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी
कूक उट्ठी सबेरे कि मैं आगई!

१९४९
वर्षा, खंडवा

: २४ :

सुलझन की उलझन है,
कैसी दीवानी, दीवानी !
पुतली पर चढ़कर गिरता
गिर कर चढ़ता है पानी !

क्या हीतल के पागलपन का
मल धोने आई हैं ?
प्रलयंकर शंकर की गंगा
जल होने आई हैं ?

बूँदें, बरछी की नौकों-सी
मुझसे खेल रही हैं !
पलकों पर कितना प्राणों—
का ज्वार ढकेल रही हैं !

अब क्या रुम-झुम से छुमकेगा—
आँगन ग्वालिनियाँ का ?
वन्दी गृह के वैभव पर
आँखें डालेंगी डाका ?

१९२१
मनोहर-निवास

: २५ :

कौन ? याद की प्याली में
बिछुड़ना घोलता-सा क्यों है ?
और हृदय की कसकों में
गुप-चुप टटोलता-सा क्यों है ?

अरे पुराने दुःख-दर्दों की
गाँठ खोलता-सा क्यों है ?
महा प्रलय की वाणी में
उन्मत्त बोलता-सा क्यों है ?

क्या है ? है यह पुनः
मधुर आमंत्रण जंजीरों का ?
है तू कौन ? खिलाड़ी,
प्रेरक मरदानों वीरों का ?

१९२२
सिमरिया वाली रानी की कोठी
जबलपुर

: २६ :

हरा - हरा कर, हरा-
हरा कर देने वाले सपने।
कैसे कहूँ पराये, कैसे
गरब करूँ कह अपने!

भुला न देवे यह 'पाना'-
अपनेपन का खो जाना,
यह खिलना न भुला देवे
पंखड़ियों का धो जाना;

आँखों में जिस दिन यमुना-
की तरुण बाढ़ लेती हूँ
पुतली के बन्दी की
पलकों नज़र झाड़ लेती हूँ।

१९२६
मनोहर-निवास

: २७ :

दूर न रह, धुन बँधने दे
मेरे अन्तर की तान,
मन के कान, अरे प्राणों के
अनुपम भोले भान।

रे कहने, सुनने, गुनने
वाले मतवाले यार
भाषा, वाक्य, विराम बिंदु
सब कुछ तेरा व्यापार,

किन्तु प्रश्न मत बन, सुलझेगा–
क्योंकर सुलझाने से?
जीवन का कागज़ कोरा मत
रख, तू लिख जाने दे।

१९२१
बिलासपुर जेल
मराठी 'ज्ञानेश्वरी' पढ़ते हुए।

: २८ :

मत झनकार जोर से
स्वर भर से तू तान समझ ले,
नीरस हूँ, तू रस बरसाकर,
अपना गान समझ ले!
फौलादी तारों से कस ले
'बंधन' मुझ पर बस ले,
कभी सिसक ले
कभी मुसक ले
कभी खींझकर हँस ले,

कान खेंच ले,
पर न फेंक,
गोदी से मुझे उठाकर,
कर जालिम
अपनी मनमानी
पर,
'जी' से लिपटाकर!

मुझ पर उतर
ऊग तारों पर
बोकर,
निज तरुणाई!
पथ पायें
युग की रवि-किरनें
तेरी देख ललाई,

कभी पनपने दे
मानस कुंजों में,
करुण कहानी !
कभी लहरने दे
पंखों-सी,
पलक-पँक्तियाँ, मानी

कभी भैरवी को
मस्तक दल पर
चढ़कर आने दे,
कैसा सखे कसाला, बलि-स्वर-
माला गुँथ जाने दे !

१९३४
मनोहर निवास

जहाँ से जो खुद को
जुदा देखते हैं
खुदी को मिटाकर
खुदा देखते हैं
फटी चिन्धियाँ पहिने,
भूखे भिखारी
फकत जानते हैं
तेरी इन्तजारी
बिलखते हुए भी
अलख जग रहा है
चिदानंद का
ध्यान-सा लग रहा है।
तेरी बाट देखूँ,
चने तो चुगा जा,
हैं फैले हुए पर,
उन्हें कर लगा जा,
मैं तेरा ही हूँ इसकी
साखी दिला जा,
ज़रा चुहचुहाहट
तो सुनने को आ जा,
जो तू यों इछुड़ने-
बिछुड़ने लगेगा,
तो पिंजड़े का पंछी
भी उड़ने लगेगा !

१६२१
बिलासपुर जेल
प्रिय 'ग़नी' के आग्रह से।

: ३० :

माधव दिवाने हाव-भाव
पै बिकाने
अब कोई चहै बन्दै
चहै निन्दै, काह परवाह
वौरन ते बातें जिन
कीजो नित आय-आय
ज्ञान, ध्यान, खान, पान
काहू की रही न चाह

भोगन के व्यूह, तुम्हें
भोगिबो हराम भयो
दुख में उमाह, इहाँ
चाहिये सदा ही आह,
विपदा जो टूटै
कोऊ सब सुख लूटै
एक माधव न छूटै
तो कराह की सदा सराह!

१६१६
[अंग्रेजी को राजनीति में रहने का वचन देने के पश्चात्]

: ३१ :

तु ही क्या समदर्शी भगवान् ?
क्या तू ही है, अखिल जगत् का
न्यायाधीश महान् ?

क्या तू ही लिख गया
वासना दुनिया में है पाप ?
फिसलन पर तेरी आज्ञा—
से मिलता कुम्भीपाक ?

फिर क्या तेरा धाम स्वर्ग है
जो तप, बल से व्याप्त
होती है वासना पूरिणी
वहीं अप्सरा प्राप्त ?

क्या तू ही देता है जग—
को, सौदे में आनंद ?
क्या तुझसे ही पाते हैं
मानव संकट दुख - द्वन्द्व

क्या तू ही है, जो कहता है
सम सब मेरे पास ?
किन्तु प्रार्थना की रिश्वत—
पर करता शत्रु विनाश ?

मेरा बैरी हो, क्या उसका
तू न रह गया नाथ ?
मेरा रिपु, क्या तेरा भी रिपु
रे समदर्शी नाथ !

क्या तू ही है, पतित अभागों
का शासन करता है?
क्या तू है सम्राट्?
लाज, तज न्याय दंड धरता है?

जो तू है, तो मेरा माधव
तू क्यों कर होवेगा
तेरा हरि तो पतितों को
उठने की अंगुलि देगा

गो-गण में जो खेले,
ग्वालों की झिड़की जो झेले
जिसके खेल-कूद से टूटें,
जीवन शाप झमेले

माखन पावे वृन्दावन में
बैठा विश्व नचावे;
वह मेरा गोपाल, पतन से
पहिले पतित उठावे!

व्याकुल ही जिसका घर है
अकुलातों का गिरिधर है,
मेरा वह नटवर है, जो
राधा का मुरलीधर है।

७ जनवरी १९३१
सेंट्रल जेल, जबलपुर

: ३२ :

उठ अब, ऐ मेरे महा प्राण !
आत्म - कलह पर
विश्व - सतह पर
कूजित हो तेरा वेद गान !
उठ अब ऐ मेरे महा प्राण !
जीवन ज्वालामय करते हों
लेकर कर मे करवाल
करते हों आत्मार्पण से
भू के मस्तक को लाल !
किन्तु तर्जनी तेरी हो,
उनके मस्तक तैयार,
पथ - दर्शक अमरत्व
और हो नभ-विदलिनी पुकार;
बीन लिये, उठ सुजान,
गोद लिये खींच कान,
परम शक्ति तू महान ।
कॉप उठे तार - तार,
तार - तार उठें ज्वार,
खुले मंजु मुक्ति द्वार ।
शांति पहर पर,
क्रान्ति लहर पर,
उठ बन जागृति की अमर तान;
उठ अब ऐ मेरे महा प्राण !

१९१८

: ३३ :

मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक !

प्रलय - प्रणय की मधु - सीमा में
जी का विश्व बसा दो मालिक !

रागें हैं लाचारी मेरी,
तानें बान तुम्हारी मेरी,
इन रंगीन मृतक खंडों पर,
अमृत - रस ढुलका दो मालिक !
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक !

जब मेरा अलगोजा बोले,
बल का मणिधर, रुख रख डोले,
खोले श्याम - कुण्डली विष को
पथ - भूलना सिखा दो मालिक !
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक !

कठिन पराजय है यह मेरी
छबि न उतर पाई प्रिय तेरी
मेरी तूली को रस में भर,
तुम भूलना सिखा दो मालिक !
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक !

प्रहर - प्रहर की लहर - लहर पर
तुम लालिमा जगा दो मालिक !
मधुर-मधुर कुछ गा दो मालिक !

१९४४

: ३४ :

आज नयन के बगले में
संकेत पाहुने आये री सखि !
जी से उठे
कसक पर बैठे
और बेसुधी-
के बन घूमें
युगुल-पलक
ले चितवन मीठी,
पथ-पद-चिह्न
चूम, पथ भूले !
दीठ डोरियों पर
माधव को
बार-बार मनुहार थकी मैं
पुतली पर बढ़ता-सा यौवन
ज्वार लुटा न निहार सकी मैं !
दोनों कारागृह पुतली के
सावन की झर लाये री सखि !
आज नयन के बँगले में
संकेत पाहुने आये री सखि !

१९२८
श्राद्ध तिथि

: ३५ :

मार डालना किन्तु क्षेत्र में
ज़रा खड़ा रह लेने दो,
अपनी बीती इन चरणों में
थोड़ी - सी कह लेने दो;

कुटिल कटाक्ष, कुसुम सम होंगे
यह प्रहार गौरव होगा
पद - पद्मों से दूर, स्वर्ग–
भी, जीवन का रौरव होगा।

प्यारे इतना - सा कह दो
कुछ करने को तैयार रहूँ,
जिस दिन रूठ पड़ो
सूली पर चढ़ने को तैयार रहूँ।

१९१४
एक पत्र में

: ३६ :

महलों पर कुटियों को वारो
पकवानों पर दूध - दही,
राज - पथों पर कुंजें वारों
मंचों पर गोलोक मही।

सरदारों पर ग्वाल, और
नागरियों पर बृज बालायें
हीर - हार पर वार लाड़ले
वनमाली वन - मालायें

छीनूंगी निधि नहीं किसी-
सौभागिनि, पुण्य-प्रमोदा की
लाल वारना नहीं कहीं तू
गोद ग़रीब यशोदा की

१६१४

: ३७ :

मैंने देखा था, कलिका के
कंठ कालिमा देते
मैंने देखा था, फूलों में
उसको चुम्बन लेते
मैंने देखा था, लहरों पर
उसको गूँज मचाते
दिन ही में, मैंने देखा था
उसको सोरठ गाते।
दर्पण पर, सिर धुन-धुन मैंने
देखा था बलि जाते
अपने चरणों से ऋतुओं को
गिन-गिन उसे बुलाते
किन्तु एक मैं देख न पाई
फूलों में बँध जाना;
और हृदय की मूरत का यों
जीवित चित्र बनाना!

११२२

: ३८ :

यह अमर निशानी किसकी है ?

बाहर से जी, जी से बाहर–
तक, आनी - जानी किसकी है ?
दिल से, आँखों से, गालों तक–
यह तरल कहानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

रोते - रोते भी आँखें मुँद–
जाएँ, सूरत दिख जाती है,
मेरे आँसू में मुसक मिलाने
की नादानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

सूखी अस्थि, रक्त भी सूखा
सूखे दृग के झरने
तो भी जीवन हरा ! कहो
मधु भरी जवानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

रैन अँधेरी, बीहड़ पथ है,
यादें थकीं अकेली,
आँखें मूँदे जाती हैं
चरणों की बानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

आंख झुकीं पसीना उतरा,
सूझे ओर न छोर,
तो भी बढ़ूँ, खून में यह
दमदार रवानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

मैंने कितनी धुन से साजे
मीठे सभी इरादे
किन्तु सभी गल गए, कि
आँखें पानी-पानी किसकी हैं ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

जी पर, सिंहासन पर,
सूली पर, जिसके संकेत चढ़ूँ-
आँखों में चुभती-भाती
सूरत मस्तानी किसकी है ?
यह अमर निशानी किसकी है ?

१६३३
हकीम जी का निवास, बुरहानपुर

: ३६ :

सजल गान, सजल तान
स-चमक चपला उठान,
गरज - घुमड़, ठान - ठान
बिन्दु-विकल शीत प्राण;
थोथे ये मोह - गीत
एक गीत, एक गीत !

छू मत आचार्य 'ग्रन्थ'
जिसके पद - पद अनंत,
वाद - वाद, पन्थ - पन्थ,
व्यापक पूरक दिगंत;
लघु मैं, कर मत सभीत।
एक गीत, एक गीत !

छू मत तू प्रणय गान
जिसके उलझे वितान,
मादक, मोहक, मलीन
चूम चाम की लुभान
कर न मुझे चाह - क्रीत,
एक गीत, एक गीत !

संस्कृति का बोझ न छू
छू मत इतिहास - लोक,
छू मत माया, न ब्रह्म,
छू मत तू हर्ष - शोक,

सिर पर मत रख अतीत;
एक गीत, एक गीत!

छू मत तू युद्ध-गान
हुंकृति, वह प्रलय-तान,
बज न उठें जंजीरें,
हथकड़ियाँ छू न प्राण!
मौत नहीं बने मीत
एक गीत, एक गीत!

गीत हो कि जी का हो,
जी से मत फीका हो,
आँसू के अक्षर हों,
स्वर अपने 'ही' का हो,
प्रलय-हार प्रणय-जीत
एक गीत, एक गीत!

१९३२

: ४० :

यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

भाग्य खोजता है जीवन के
खोये गान ललाम इसी में,
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

अन्धकार लेकर जब उतरी
नव - परिणीता राका रानी,
मानों यादों पर उतरी हो
खोई - सी पहचान पुरानी;

तब जागृत सपने में देखा
मेरे प्राण उदार बहुत हैं !
पर झिलमिल तारों मे देखा
'उनके पथ के द्वार बहुत हैं',

गति न बढ़ाओ, किस पथ आऊँ,
भूल गया अभिराम इसी में,
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

जब स्वर्गंगा के तारों ने
आँखों के तारे पहिचाने
कोटि-कोटि होने का न्यौता
देने लगे गगन के गाने,

मैं असफल प्रयास, यौवन के
मधुर शून्य को अंक बनाऊँ
तब न कहीं, अनबोली घड़ियों
तेरी साँसों को सुन पाऊँ

मंदिर दूर, मिलन - वेला-
आगई पास, कुहराम इसी मे
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे !

बाँट चले अमरत्व और विश्वास
कि मुझसे दूर न होंगे !
मानों ये प्रभात तारों से
सपने चकनाचूर न होंगे।

पर ये चरण, कौन कहता है
अपनी गति में रुक जावेंगे,
जिन पर अग-जग झुकता है
वे मेरे खातिर झुक जावेंगे ?

अर्पण ? और उधार करूँ मैं ?
'हारों' का यह दाम ? लुटी मैं !
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे।

चिड़ियाँ चहकीं, तारों की-
समाधि पर, नभ चीत्कार तुम्हारी !
आँख-मिचौनी में राका-रानी
ने अपनी मणियाँ हारीं।

इस अनगिन प्रकाश से,
गिनती के तारे कितने प्यारे थे ?
मेरी पूजा के पुष्पों से
वे कैसे न्यारे - न्यारे थे ?

देरी, दूरी, द्वार - द्वार, पथ-
बन्द, न रोको श्याम इसी में;
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे।

हो धीमे पद - चाप, स्नेह की
जंजीरें सुन पड़े सुहानी
दीख पड़े उन्मत्त, भारती,
कोटि-कोटि सपनों की रानी

यहीं तुम्हारा गोकुल है,
वृन्दावन है, द्वारिका यहीं है
यहीं तुम्हारी मुरली है
लकुटी है, वे गोपाल यहीं है!

'गोधूली' का कर सिंगार,
मग जोह-जोह लाचार झुकी मैं।
यह चरण-ध्वनि धीमे-धीमे।

१६४३
सत्यनारायण कुटीर, प्रयाग

: ४१ :

'आते आते रह जाते हो'
जाते जाते दीख रहे
आँखें लाल दिखाते जाते
चित्त लुभाते दीख रहे।

दीख रहे पावनतर बनने
की धुन के मतवाले से
दीख रहे करुणा-मंदिर से
प्यारे देश निकाले से।

दोषी हूं, क्या जीने का
अधिकार नहीं दोगे मुझको ?
होने को बलिहार, पदों का
प्यार नहीं दोगे मुझको ?

: ४२ :

दुर्गम हृदयारण्य, दण्डका-
रण्य घूम जा आजा,
मति भिल्ली के भाव - बेर
हों जूठे, भोग लगा जा!
मार पांच बटमार, साँवले
रह तू पंचवटी में,
छिने प्राण - प्रतिमा तेरी
भी, काली पर्ण - कुटी में।
अपने जी की जलन बुझाऊँ,
अपना - सा कर पाऊँ,
"वैदेही सुकुमारि कितै गई"
तेरे स्वर में गाऊँ।

१६११

: ४३ :

हे प्रशान्त ! तूफान हिये-
में कैसे कहूँ समा जा ?
भुजग - शयन ! पर विषधर-
मन में, प्यारे लेट लगा जा !
पद्मनाभ ! तू गूँज उठा जा
मेरे नाभि - कमल से,
तू दानव को मानव करता
रे सुरेश ! निज बल से !
प्यारे विश्वाधार ! विश्व से
बाहर तुझे ढकेला,
गगन - सदृश तुझ में न
समाया, क्या मैं दीन अकेला ?

हे घनश्याम ! धधकते हीतल-
को शीतल कर दानी,
हरियाला होकर दिखला दूँ
तेरी क़ीमत जानी !
हे शुभांग ! सब चर्म - मोह-
तज, यहाँ जरा जो आओ,
तो अपनी स्वरूप - महिमा के
सच्चे बन्दी पाओ।
लक्ष्मीकान्त ! जगज्जननी
के कैसे होंगे स्वामी,
उसके अपराधी पुत्रों से
समझो जो बदनामी।

श्यामल जल पर तैर रहे हो,
श्याम गगन शिर धारा,
शस्य श्यामला से उपजा है,
श्याम स्वरूप तुम्हारा।
कालों से मत रूठो प्यारे
सोचो प्रकट नतीजा,
जिससे जन्म लिया है वह
था काला ही था बीना!
मुझ से कह छल-छन्द—
बने जो शान दिखाने वाले
मैं तो समझूँगा बाहर क्या
भीतर भी हो काले!

पोथी-पत्रे आँख-मिचौनी
बन्द किये हूँ देता,
अजी योगियों को है अगम्य
मैं भले समय पर चेता!
वह भावों का गणित मुझे
प्रतिपल विश्वास दिलाता
जो योगी को है अगम्य
वह पापी को मिल जाता!
बढ़िये, नहीं द्रवित हो पढ़िये
दीजे पात्र-हृदय भर,
सार्थक होवे नाम तुम्हारा
करुणालय भव-भय हर।

मेरे मन की जान न पाये
बने न मेरे हामी,
घट-घट अन्तर्यामी कैसे?
तीन लोक के स्वामी!
भाव-बिन्धियों में ममता का
डाल मसाला ताजा

चिक्कण हृदय - पत्र प्रस्तुत है
अपना चित्र बना जा,
नवधा की, नौ कोने वाली,
जिस पर फ्रेम लगा दूँ
चन्दन, अक्षत भूल प्राण का
जिस पर फूल चढ़ा दूँ ।

१६०८

'शान्ताकारं' प्रार्थना से प्रभावित

अपना आप हिसाब लगाया
पाया महा दीन से दीन,
डेसिमल पर दस शून्य जमाकर
लिखे जहाँ तीन पर तीन।

इतना भी हूँ क्या ? मेरा मन
हो पाया निःशंक नहीं,
पर मेरे इस महाद्वीप का
इससे छोटा अंक नहीं!

भावों के धन, दाँवों के ऋण,
बलिदानों में गुणित बना,
और विकारों से भाजित कर
शुद्ध रूप प्यारे अपना।

: ४५ :

आ मेरी आँखों की पुतली,
आ मेरे जी की धड़कन,
आ मेरे वृन्दावन के धन,
आ व्रज - जीवन मन मोहन !

आ मेरे धन, धन के बंधन,
आ मेरे जन, जन की आह !
आ मेरे तन, तन के पोषण,
आ मेरे मन - मन की चाह !

केकी को केका, कोकिल को-
कूज गूँज अलि को सिखला !
वनमाली, हँस दे हरियाली
वह मतवाली छवि दिखला !

१९२१
विश्वासपुर जेल

: ४६ :

वह टूटा, जी जैसा तारा !
कोई एक कहानी कहता
झाँक उठा बेचारा !
वह टूटा, जी जैसे तारा !

नभ से गिरा, कि नभ में आया !
खग-रव से जन-रव में आया,
वायु-रुँधे सुर-मग में आया,
अमर तरुण तम-जग में आया,
मिटकर आह, प्राण-रेखा से
श्याम अंक पर अंक बनाता,
अनगिनती ठहरी पलकों पर,
रजत-धार से चाप सजाता ?
चला बीतती घटनाओं-सा,—
नभ-सा, नभ से—
बिना सहारा।
और कहानी वाला चुपके
काँख उठा बेचारा !
वह टूटा, जी जैसा तारा !

नभ से नीचे झाँका तारा,
मिले भूमि तक एक सहारा,
सीधी डोरी डाल नजर की
देखा, खिला गुलाब बिचारा,
अनिल हिलाता, अनल रश्मियाँ
उसे जलातीं, तब भी प्यारा—

अपने काँटों के मंदिर से
स्वागत किये, खोल जी सारा,
और कहानी—
वाली आँखों—
उमड़ी तारों की दो धारा,
वह टूटा, जी जैसा तारा।

किन्तु फूल भी कब अपना था?
वह तो बिछुड़न थी, सपना था,
झंझा की मरजी पर उसको
बिखर-बिखर ढेले ढँपना था।
तारक रोया, नभ से भू तक
सर्वनाश ही अमर सहारा,
मानों एक कहानी के दो
खंडों ने विधि को धिक्कारा
और कहानी—
वाला बोला—
तीन हुआ जग सारा।
वह टूटा, जी जैसा तारा।

अनिल चला क़ुरबानी गाने,
जग-दृग तारक-मरण सजाने,
खींच-खींच कर बादल लाने,
बलि पर इन्द्र-धनुष पहिचाने,
टूटे मेघों के जीवन से
कोटि तरल तर तारे,
गरज, भूमि के विद्रोही
भू के जी में उकसाने,
और कहानी वाला चुप,
मैं जीता? ना मैं हारा।
वह टूटा, जी जैसा तारा।

: ४७ :

कैसे मानूँ तुम्हें प्राणधन
जीवन के बन्दी खाने में,
श्वास-वायु हो साथ, किन्तु
वह भी राजी कब बँध जाने में ?

इन्द्र-धनुष यदि स्थायी होते
उनको यदि हम लिपटा पाते,
हरियाली के मतवाले क्यों
रंग - बिरंगे बाग़ लगाते ?

ऊपर सुन्दर अमर अलौकिक
तुम प्रभु - कृति साकार रहो,
मजदूरी के बंधन से उठ—
कर पूजा के प्यार रहो।

दिन आये, मैंने उन पर भी
लिखी तुम्हारी अमर कहानी,
रातें आईं स्मृति लेकर
मैंने ढाला जी का पानी।

घड़ियाँ तुम्हें ढूँढ़ती आईं,
बनी कँटीली कारा - कड़ियाँ,
आग लगाकर भी कहलाईं
वे दृग-सुख वाली फुलझड़ियाँ।

मैंने आँखें मूँदीं, तुमको
पकड़ जोर से जी में खींचा,

: ४८ :

मचल मत, दूर-दूर, ओ मानी !
उस सीमा - रेखा पर
जिसके ओर न छोर निशानी; मचल०
घास - पात से बनी वहीं
मेरी कुटिया मस्तानी,
कुटिया का राजा ही बन
रहता कुटिया की रानी ! मचल०
राज - मार्ग से परे, दूर, पर
पगडंडी को छू कर
अश्रु - देश के भूपति की है
बनी जहाँ रजधानी। मचल०
आँखों में दिलवर आता है,
सैन - नसैनी चढ़कर,
पलक बाँध पुतली में
भूले देती करुण कहानी। मचल०
प्रीति - पिछौरी भीगा करती
पथ जोहा करती हूँ,
जहाँ गवन की सजनि
रमन के हाथों खड़ी बिकानी। मचल०
दो प्राणों मे मचे न माधव
बलि की आँख मिचौनी,
जहाँ काल से कभी चुराई
जाती नहीं जवानी। मचल०

भोजन है उल्लास, जहां
आँखों का पानी, पानी !
पुतली परम बिछौना है
ओढ़नी पिया की बानी। मचल०
प्रान - दाँव की कुंज - गली
है, गो - गन बीचों बैठी,
एक अभागिन बनी श्याम धन
बनकर राधारानी। मचल०
सोते हैं सपने, ओ पंथी !
मत चल, मत चल, मत चल,
नज़र लगे मत, मिट मत जाये
साँसों की नादानी।
मचल मत, दूर - दूर, ओ मानी !

१९२१
नागपुर

: ५६ :

मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

हृदय में बेचैन
मुख भोला किये,

दो हृदय ले, तौल पर तौला किये।

यह न था बाजार, पर
उनके तराजू हाथ मे थी,
क्रोध के थे, किन्तु उनके
बोल थे कि सनाथ मैं थी,

सुघड़, मन पर
गर्व को तौला किये,

भूलती, प्रभु - बोल का डोला किये,
मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

आज चुम्बन का प्रलोभन
स्नेह की जाली न डाली,
नहीं मुझ पर छोड़ने को
प्रेम की नागिन निकाली,

सजनि मेरे
प्राणों का झोला किये;

डालते थे प्यार को, वे क्रोध का गोला किये,
मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

समय सूली-सा टँगा था,
बोल खूँटी से लगे थे,
मरण का त्यौहार था सखि,
भाग जीवन-धन जगे थे,
रूप के अभिमान में जी का ज़हर घोला किये,
मैं नहीं बोली, कि वे बोला किये।

: ५० :

पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

विन्ध्य-शिखरों से
तरल सन्देश मीठे
बाँटता है कौन
इस ढालू हृदय पर ?
कौन पतनोन्मुख हुआ
दौड़ा मिलन को ?
कौन द्रुत-गति निज-
पराजय की विजय पर ?

पत्र के प्रतिबिम्ब, धारों पर
विकल छबि बाँचती है,
पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

बिना गूँथे, कौन
मुक्ताहार बन कर,
सिंधु के घर जा
रहा, पहुँचा रहा है ?
कौन अंधा, अल्प
का सौंदर्य ढोता,
पूर्ण पर अस्तित्त्व
खोने जा रहा है ?

कौन तरणी इस पतन का

वेग जी से जाँचती है ?
पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

धूलि में भी प्राण है
जल-दान तो कर,
धूलि में अभिमान है
उड़ हरे सर,
धूलि में रज-दान है
फल चख मधुर तर,
धूलि में भगवान है
फिरता घरों घर,
धूलि में ठहरे बिना, यह
कौन-सा पथ नापती है
पुतलियों में कौन ?
अस्थिर हो, कि पलकें नाचती हैं !

११२६

: ५१ :

हाँ, याद तुम्हारी आती थी,
हाँ, याद तुम्हारी भाती थी,
एक तूली थी, जो पुतली पर
तसवीर सी खींचे जाती थी;

कुछ दूख सी जी मे उठती थी,
मैं सूख सी जी में उठती थी,
जब तुम न दिखाई देते थे
मनसूबे फीके होते थे;

पर ओ, प्रहर-प्रहर के प्रहरी,
ओ तुम, लहर-लहर के लहरी,
साँसत करते साँस-साँस के
मैंने तुमको नहीं पुकारा।

तुम पत्ती-पत्ती पर लहरे,
तुम कली-कली मे चटख पड़े,
तुम फूलों-फूलों पर महके,
तुम फलों-फलों मे लटक पड़े,

जी के झुरमुट से झाँक उठे,
मैंने मति का आँचल खींचा,
मुझको ये सब स्वीकार हुए,
आँखे ऊँची, मस्तक नीचा;

पर ओ राह-राह के राही,
छू मत ले तेरी छल-छाँही,
चीख़ पड़ी मैं यह सच है, पर
मैंने तुमको नहीं पुकारा।

तुम जाने कुछ सोच रहे थे,
उस दिन आँसू पोंछ रहे थे,
अर्पण की इव दरस लालसा
मानो स्वयं दबोच रहे थे,

अनचाही चाहों से लूटी,
मैं इकली, बेलाख, कलूटी
कसकर बाँधी आनें टूटीं,
दिखे, अधूरी तानें टूटीं,

पर जो छंद-छंद के छलिया
ओ तुम, बंद-बंद के बन्दी,
सौ-सौ सौगन्धों के साथी
मैंने तुमको नहीं पुकारा !

तुम धक्-धक् पर नाच रहे हो,
साँस - साँस को जाँच रहे हो,
कितनी अलः सुबह उठती हूँ,
तुम आँखों पर चू पड़ते हो;

छिपते हो, व्याकुल होती हूँ,
गाते हो, मर-मर जाती हूँ
तूफानी तसवीर बनें, आँखो
आये, झर-झर जाती हूँ,

पर ओ खेल-खेल के साथी,
बैरन नेह - जेल के साथी,
निज तसवीर मिटा देने में
आँखों की इंडेल के साथी,
स्मृति के जादू भरे पराजय !
मैंने तुमको नहीं पुकारा !

जंजीरें हैं, हथकड़ियाँ हैं,
नेह सुहागिन की लड़ियाँ हैं,
काले जी के काले साजन
काले पानी की घड़ियाँ हैं;

मत मेरे सींखचे बनजाओ,
मत ज़ंजीरों को छुमकाओ,
मेरे प्रणय-चरणों में साजन,
किसने कहा कि चुप-चुप आओ;

मैंने ही आरती सँजोई,
ले-ले नाम प्रार्थना बोली,
पर तुम भी जाने कैसे हो,
मैंने तुमको नहीं पुकारा !

१६३८

: ५२ :

अपनी ज़बान खोलो तो
हो कौन ज़रा बोलो तो!
रवि की कोमल किरणों में
प्रिय कैसे बस लेते हो?
नव विकसित कलिकाओं मे
तुम कैसे हँस लेते हो?

माधव की पिचकारी की
बूँदों में उछल पड़े से,
आँखों में लहलह करते
मोती हो मधुर जड़े से!

हैं शब्द वही, मधुराई
किससे कैसे छीनी है?
छानोगे किस छलिया को
छबि की चादर झीनी है?

बाँसुरिया कहाँ छुपाई
कैसे तुम गा देते हो?
कैसे विन्ध्या की गोदी
वृन्दाबन ला देते हो?

क्या राग तुम्हारा जग से
बेराग बनाये देता?
बरसों का मौन मिटाकर
"आहा" कहलाये लेता!

जी को, तेरे गीतों में
बरबस गुँथवाये देता,
प्राणों का मोह छुड़ाता
कैसा आमंत्रण देता।

तू अमर धार गायन की,
द्युति की तू मधुर कहानी,
भारत माँ की वीणा की
तेजोमय करुणा-वाणी!

हीतल मे पागल करने
जिस समय ज्वार आता है,
उस दिवस तरुण सेना में
बलि का उभार आता है।

जिस दिन कलियों से तुझको
आन्तरिक प्यार आता है,
उस दिन उनके शिर, माँ के
चरणों उतार आता है।

आँखों की नव अरुणाई
पीढ़ी में मंगल बोती,
गुरु शुक्र उदित हो पड़ते
लख तेरी शीतल जोती;

तम में खलबली मचाता
रे गायक! क्या तू कवि है?
दाँवों में तू योद्धा है!
भावों मे वीर सुकवि है!

१६२७

: ५३ :

तुही है बहकते हुओं का इशारा,
तुही है सिसकते हुओं का सहारा,
तुही है दुखी दिलजलों का 'हमारा,
तुही भटके भूलों का है धुर का तारा,
जरा सीखचों में 'समा' सा दिखा जा,
मैं सुध खो चुकूँ, उससे कुछ पहले आ जा,

१९२१
बिलासपुर जेल

: ५४ :

गुनों की पहुँच के
परे के कुओं में,
मैं डूबा हुआ हूँ
जुड़ी बाजुओं में,

जरा तैरता हूं, तो
डूबों हुओं में,
अरे डूबने दे
मुझे आँसुओं में !

रे नक्काश, कर लेने
दे अपने जी की,
मिटाऊँ, ला तसवीर
मैं आइने की !

१९१०

: ५५ :

पत्थर के फर्श, कगारों में
सीखों की कठिन कतारों में
खंभों, लोहे के द्वारों में
इन तारों मे दीवारों में
कुंडी, ताले, संतरियों में
इन पहरों की हुंकारों में
गोली की इन बौछारों में
इन वज्र बरसती मारों में
इन सुर शरमीले गुण, गरवीले
कष्ट सहीले वीरों में
जिस ओर लखूं तुम ही तुम हो
प्यारे इन विविध शरीरों मे।

१६२१
बिलासपुर जेल